LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

2/3 (श्लोक 8-19), रविवार, 06 जुलाई 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/QHrzr0lp8M8

ईश्वर की अनुभूति का मार्ग

भारत माता, गीता माता, मधुराष्टकम्, सुन्दर भजन, श्रीहनुमान चालीसा पाठ, पारम्परिक दीप प्रज्वलन, श्री गुरु चरण वन्दना एवं भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में वन्दन करते हुए नवम् अध्याय राजविद्याराजगुह्ययोग के मध्यांश सत्र का विवेचन आरम्भ हुआ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

महाभारत के मध्य में भगवद्गीता आती है और गीताजी के मध्य में यह नवम् अध्याय राजविद्याराजगुह्ययोग आता है। सारे योगों का राजा-राजविद्या, राजगुह्य - अत्यन्त गुह्यतम। यह योग यदि समझ आ जाए तो जीवन प्रकाशित हो जाए, जीवन आह्लादित हो जाए। कुछ ऐसे योग होते हैं जिन्हें शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता।

अर्जुन की महती कृपा हम पर हुई है कि उन्होंने श्रीभगवान् से प्रश्न किए और श्रीभगवान् ने उन सभी के उत्तर दिए। अर्जुन निमित्त बने जिससे हम सब लाभान्वित हुए। यह गुह्य शास्त्र, यह दिव्य अनुभव श्रीभगवान् ने शब्दों में बाँध कर हमारे समक्ष दिया।

मृत्यु के पश्चात् श्रीभगवान् मिलेंगे, हम स्वर्ग में जाएँगे यह तो ज्ञात नहीं है। इस मृत्युलोक में सर्वव्याप्त उस परमपिता का अनुभव कैसे करें? इस विद्या को बताने वाला यह अध्याय - **राजविद्याराजगुह्ययोग है।**

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।9.7।।

विवेचन- सातवें श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! कल्प के अन्त में सारे भूतमात्र प्रकृति में लीन हो जाते हैं। प्रलय के समय एक युग समाप्त हो जाता है। युग की समाप्ति पर प्रकृति के समस्त भूतमात्र प्रकृति में लीन हो जाते हैं। कल्पों के आरम्भ में श्रीभगवान् फिर से रचना करना आरम्भ करते हैं।

हम देखते हैं कि ग्रीष्म ऋतु मे पहाड़ों पर दिखने वाली हरियाली पीली पड़ जाती है, जल जाती है, समाप्त हो जाती है। वर्षा ऋतु

के आने पर कुछ दिनों में ही सारे पहाड़ फिर हरे-भरे दिखाई देने लगते हैं।
यह कैसा चमत्कार है कि एक ऋतु के अन्त मे सारी हरियाली छिप जाती है, जल जाती है, नष्ट हो जाती है, प्रकृति में विलीन हो जाती है। वह वर्षा के आने मात्र से फिर से हरी-भरी हो जाती है।

जैसे कोई सुनार सोने के अलङ्कार को पिघलाकर ठोस सोना बना देता है। फिर सोने को साञ्चे में डालकर नए अलङ्कार का निर्माण कर देता है। अलङ्कार सोना बना जाता है और सोना फिर से अलङ्कार में परिवर्तित हो जाता है। ऐसा ही जादू श्रीभगवान् स्वयं करते हैं। एक कल्प के अन्त में सारी जीव सृष्टि नष्ट प्रतीत होती है। कल्प के आरम्भ में श्रीभगवान् नई सृष्टि रचना आरम्भ कर देते हैं।

जैसे लहरें समुद्र में उठती गिरती हैं। जल के ऊपर उठने से लहरें बन जाती हैं और लहरें गिरने से समुद्र बन जाता है। लहरें और समुद्र अलग नहीं हैं। बस ऊपर उठा जल ही लहर है। जैसे ही लहर नीचे गिरती हैं समुद्र में विलीन हो जाती है। उसी प्रकार कल्प के अन्त में सारे जीव प्रकृति में विलीन हो जाते हैं और कल्प के आरम्भ में फिर श्रीभगवान् नई सृष्टि का निर्माण करते हैं।

जैसे नींद से जागने पर मन का सपना मन में ही विसर्जित हो जाता है वैसे ही कल्प के अन्त में सारी जीव सृष्टि समाप्त प्रतीत होने लगती है।

श्रीभगवान् ने अत्यन्त सरल शब्दों में घटने वाले इस परिवर्तन को हमें समझाया कि कुछ भी नष्ट नहीं होता है। ऊर्जा का नियम (Law of energy) तो बहुत बाद में आया है। साढे पाँच हजार साल पहले गाई गई भगवद्गीता में श्रीभगवान् कहते हैं कि प्रलय और सृष्टि का चक्र निरन्तर चलता रहता है।

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन- अपनी माया को अङ्गीकार कर प्रकृति के स्वाधीन होने से वास्तविक पराधीन इस भूत समुदाय को मैं बार-बार उनके कर्मानुसार उत्पन्न करता हूँ, जन्म देता हूँ। इस जन्म के हमारे कर्मों के आधार पर निर्भर होगा कि हम अगला जन्म कहाँ पाएँगे? हमारे कर्मों पर अगला जन्म निर्भर करता है। उन्हीं कर्मों के अनुसार श्रीभगवान् हमें उसी योनि में प्रविष्ट कर देते हैं।

पन्द्रहवें अध्याय में हमने जाना कि श्रीभगवान् पुरुषोत्तम हैं, परमपुरुष हैं। इसीलिए पन्द्रहवें अध्याय को **पुरुषोत्तमयोग** कहते हैं।
श्रीभगवान् स्वयं कहते हैं-
अहं बीजप्रद: पिता।। 14.4।।

मैं केवल बीज प्रदान करने वाला पिता हूँ लेकिन सबके अन्दर अंश रूप से संस्थापित हूँ।

प्रकृति और पुरुष दोनों के मिलन से जीव सृष्टि बनती है। हमारा जन्म प्रकृति और पुरुष के मिलन से हुआ है। हमारी देह पञ्च महाभूतों से निर्मित है क्योंकि शरीर प्रकृति ने दिया है। हमारा मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार सब प्रकृति से प्राप्त हुआ है। इसका श्रीभगवान् से कोई सरोकार नहीं है। श्रीभगवान् का अंश आत्मा के रूप में शरीर में विराजमान है। हम प्रकृति के अधीन हैं। प्रकृति जो कराएगी वह करना है। प्रकृति से प्राप्त शरीर से जो-जो कार्य करते जाएँगे, हमारा मन वैसा ही होता जाएगा।

यदि हमारी वासनाएँ, कामनाएँ हमारे अन्तिम प्रलय के समय, हमारी मृत्यु के समय पूर्ण नहीं होती हैं तो बाहर निकलने वाली आत्मा के साथ अतृप्त कामनाओं वाला मन चिपकता है। मन ही आत्मा को गति प्रदान करता है कि कौन सी योनि में प्रवेश करना है जहाँ सारी वासनाएँ, सारी कामनाएँ पूर्ण हो सकें। श्रीभगवान् कहते हैं कि ये सारी घटनाएँ मैं ही बनाता हूँ।

जैसे दूध को जामन लगते ही दही बन जाता है। बीज को जल का स्पर्श होते ही वह बीज पल्लवित होकर वृक्ष बन जाता है। पूर्ण चन्द्र के आकाश में आने पर समुद्र में लहरें उठने लगती हैं, परन्तु चन्द्र को लहरें उठाने के लिए श्रम नहीं करना पड़ता। ऐसे ही ये सारी घटनाएँ स्वयं ही घटती हैं।

उसी प्रकार श्रीभगवान् के लिए बिना किसी श्रम के, बिना किसी कष्ट के सारी सृष्टि चलाना सरल है।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन- कोई भी कर्म श्रीभगवान् को बाँध नहीं सकता। लहरों के उठने से चन्द्रमा पर कोई प्रभाव नहीं होता लेकिन पूर्णिमा के चन्द्रमा के कारण समुद्र की लहरें उठने लगती हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान् सारा कुछ कार्य कर रहे हैं पर वे उनमें आसक्ति नहीं रखते, उनमें लिप्त नहीं होते। अपने आप करवा देते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं, उन कर्मों में आसक्ति रहित होने से, उदासीन भाव होने के कारण मुझे कोई कर्म बाँध नहीं सकता।

जैसे हम दीप जलाते हैं तो दीप का प्रकाश चारों ओर फैल जाता है। उस प्रकाश में क्या करना है- पुण्यकर्म अथवा पापकर्म। कोई भगवद्गीता का पाठ करे या पापकर्म करे, दीप को कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसका काम है प्रकाश देना और वह निरन्तर प्रकाश देता रहता है। यह तो उस व्यक्ति पर निर्भर होता है कि उसे प्रकाश में क्या करना है?

श्रीभगवान् कहते हैं कि सृष्टि में सारे कार्य मेरे कारण हो रहे हैं पर मैं उस कर्म में लिप्त नहीं होता। उसमें आसक्त नहीं होता।

दीप के प्रकाश में अशुभ कार्य हो तो दीप विचलित नहीं होता और शुभकार्य होने पर दीप की लौ बड़ी नहीं होती। न हर्ष है, न प्रमाद, न क्रोधित होता है, न ही आनन्दित होता है। दीप निर्लिप्त रहता है। श्रीभगवान् दीप की भाँति निर्विकार भाव से सभी क्रियाएँ कर रहे हैं।

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि मैं प्रकृति का अध्यक्ष हूँ अर्थात् मैं सर्वेसर्वा हूँ। मेरी अध्यक्षता में सृष्टि का सब काम प्रतिपादित हो रहा है।

जैसे पूज्य स्वामी गोविन्ददेव गिरिजी गीता परिवार के अध्यक्ष हैं। उनके निर्देशन के कारण **लर्न गीता** का सारा काम चल रहा है। उनके मार्गदर्शन में सभी कार्यक्रम हैं लेकिन वे उसमें लिप्त नहीं है। उन्होंने एक व्यवस्था खड़ी कर दी है, जिससे सारा कार्य चल रहा है।

श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि मेरे अधिष्ठान के कारण प्रकृति इस चराचर सृष्टि का निर्माण करती है। मेरे कारण ही यह संसार निरन्तर चलता रहता है।

इसे निम्न उदाहरण से समझते हैं-
बाजार में जाकर हम कहते है कि एक टाटा नमक दे दो। क्या यह नमक रतन टाटाजी ने बनाया? उन्होंने एक व्यवस्था खड़ी कर दी। नमक का कारखाना बनवाया, जहाँ पानी को सुखाकर नमक बनाया गया, छाना गया, गर्म किया गया। पैक किया गया और बक्सों में डालकर वितरित किया गया। वितरक ने उन बक्सों को अलग-अलग स्थानों पर पहुँचाया। रतन टाटा जी ने व्यवस्था खड़ी की लेकिन स्वयं नमक की पैकिङ्ग नहीं की।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं प्रकृति का अध्यक्ष हूँ और प्रकृति चराचर सृष्टि का सृजन करने में लगी रहती है। प्रकृति में परिवर्तन का जो चक्र चल रहा है उसमें श्रीभगवान् कहीं लिप्त नहीं हैं।

बीज से वृक्ष उगते हैं, ऊपर उठते हैं, गिर जाते हैं। बीजों के अङ्कुरण से फिर नए वृक्ष बनते हैं, फिर से गिर जाते हैं। यह चक्र श्रीभगवान् की अध्यक्षता में हो रहा है। वे स्वयं कुछ नहीं कर रहे, प्रकृति कर रही है।

9.11

अवजानन्ति मां(म्) मूढा, मानुषीं(न्) तनुमाश्रितम्।
परं(म्) भावमजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम्।।9.11।।

मूर्ख लोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वररूप श्रेष्ठ भाव को न जानते हुए मुझे मनुष्य शरीर के आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर (मेरी) अवज्ञा करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि मेरे परम भाव को नहीं जानने वाले, मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मूढ़ लोग मुझ सम्पूर्ण भूतों के महेश्वर को तुच्छ समझते हैं। वे सामान्य मनुष्य हैं। हमारी अपनी सोच ही छोटी है।

जैसे घोड़े की आँखों पर ब्लिङ्कर या ब्लाइंडर्स लगाने से उसे सामने का ही दिखता है, इधर-उधर का नहीं दिखता है।

उसी प्रकार हम मानव जन्म में आए हैं तो हमें लगता है कि श्रीभगवान् भी मनुष्य ही हैं। श्रीभगवान् का मानव रूप हमने बनाया और उनकी पूजा करने लगे, लेकिन श्रीभगवान् तो चराचर सृष्टि में व्याप्त हैं, कण-कण में समाए हैं। हर रूप में व्यक्त होते हुए भी अव्यक्त हैं। हम अपनी इच्छानुसार उन्हें मनोवाञ्छित रूप दे देते हैं लेकिन इस प्रकार श्रीभगवान् को रूप देना श्रीभगवान् को तुच्छ समझना ही है। क्या श्रीभगवान् छोटी-सी वस्तु में समा सकते हैं? यह हमारी मूर्खता है कि हम श्रीभगवान् को सीमित समझते हैं। इसमें कुछ भी गलत नहीं है क्योंकि इसका कारण है कि हम मानव देह में आए हैं। मानव देह को कोई बात जिस प्रकार से समझ आएगी, उसे उसी प्रकार से समझाना होता है।

यह पहला सोपान है कि हम श्रीभगवान् को उस मूर्ति में देखें। जैसे-जैसे आगे बढ़ते है वैसे-वैसे सारे जीव सृष्टि में, सभी लोगों में मुझे देखने लगते हैं। धीरे-धीरे सजीव नहीं, निर्जीव सृष्टि में भी श्रीभगवान् का अंश है, यह समझने लगते हैं।

यो मामं पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।। 6:30।।

श्रद्धेय स्वामी शरणानन्द जी महाराज नेत्रहीन थे परन्तु उनके प्रज्ञा चक्षु थे। दो-चार शिष्यों के साथ प्रति शाम को टहलने जाते थे। एक बार एक पेड़ के नीचे जाकर वे एक पत्थर को उठाकर उस पर हाथ घुमाने लगे और बातें करने लगे। चलते समय बोले, बेटा मैं कल फिर आऊँगा फिर बातें करेंगे। साथ के एक शिष्य को आश्चर्य हुआ क्योंकि उसकी सोच सीमित थी। संयोग से अगले दिन फिर उसी पेड़ के नीचे आकर उसी पत्थर को उठाकर बोले मैं आ गया, आज फिर बातें करेंगे। जाने के पूर्व फिर कहा कि में कल फिर आऊँगा। साथ वाले व्यक्ति के मन में शङ्का आ गई कि हो सकता है महाराज जी कदम गिनकर वहाँ

पहुँचे हों। उसका मन तो महाराज जी के प्रति समर्पित था पर बुद्धि समर्पित नहीं, इसलिए प्रश्न करती थी।

श्रीभगवान् ने कहा है-

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥8:7।।
जो मन और बुद्धि को अर्पित करेगा वही मुझे प्राप्त कर सकता है।

इस व्यक्ति ने मन महाराज जी को अर्पित किया था लेकिन बुद्धि अर्पित नहीं की थी। उसने सोचा कि आज कुछ ऐसा किया जाए जिससे पता चले, ऐसी घटना क्यों हो रही है। चलते समय उसने पत्थर को उठाकर लिया और विपरीत दिशा में फेङ्क दिया। अगले दिन शरणानन्द जी महाराज टहलने निकले तो वह शिष्य सबसे आगे चलने लगा। जब महाराज जी ने उसी पत्थर को उठाकर कहा कि तुम यहाँ कैसे आ गए? वह अचम्भित रह गया। अब तो इस शिष्य की बुद्धि का भी समर्पण हो गया। वह कहने लगा कि महाराज जी क्षमा करें, मुझसे भयङ्कर भूल हुई। मैंने आप पर शङ्का की। मुझे बताएँ कि यह घटना कैसे हुई?
शरणानन्द जी महाराज ने कहा कि मैंने उस पत्थर में चेतना जागृत कर दी थी जिससे निर्जीव लगने वाले पत्थर में प्राण आए। मैंने उसकी सोई चेतना को जगाया जो पहले से ही वहाँ थी। उससे आने वाले कम्पन मुझे आकर्षित करते थे। यह पत्थर आज यहाँ गिरा था और मुझे आकर्षित कर रहा था, इसलिए मैं इस पत्थर के पास आया।

स्वामी शरणानन्दजी ने पत्थर में भी चेतना जागृत कर दी थी। वह परमतत्त्व पत्थर में भी है, इसलिए पत्थर में भी चेतना जागृत की जा सकती है।

पण्ढरपुर के भगवान् विठोबा हैं, जहाँ पर प्रतिवर्ष पन्द्रह दिनों के लिए वारकरी मीलों पैदल चलकर पहुँचते हैं और उनके चरणों को स्पर्श करते हैं। पत्थर की मूर्ति में किस प्रकार की ऊर्जा समाहित होगी हम सोच भी नहीं सकते।

इस चराचर जगत में व्याप्त परमात्मा को समझना अत्यन्त आवश्यक है।
यदि किसी को पीलिया हो जाए तो उसे सब कुछ पीला ही दिखाई देता है। यदि ज्वर के कारण मुँह कड़वा हो जाए तो दूध भी कड़वा लगता है।
हम काञ्ची पीकर अमृत के परिणाम की कामना करते हैं। पूर्व दिशा में चलकर पश्चिम में जाना चाहते हैं तो किस प्रकार पहुँच सकते हैं? जब तक यह भावना हमारे मन में नहीं बनेगी।

मयाध्येक्षण प्रकृतिः।
अर्थात् श्रीभगवान् की अध्यक्षता में प्रकृति की रचना का कार्य चल रहा है। चराचर सृष्टि में वे व्याप्त हैं। जब तक यह भावना हमारे मन में नहीं बनेगी तब तक उसके अस्तित्व को हम जान नहीं सकते।

9.12

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं(ञ्) चैव, प्रकृतिं(म्) मोहिनीं(म्) श्रिताः।।9.12।।

(जो) आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे अविवेकी मनुष्यों की सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभ-कर्म व्यर्थ होते हैं (और) सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् जिनकी आशाएँ, कर्म और ज्ञान (समझ) सत्-फल देने वाले नहीं होते।

विवेचन- व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञान वाले विक्षिप्त चित्त अज्ञानी जन, राक्षसी, आसुरी तथा मोहिनी प्रकृति वाले जो आसुरी सम्पति को धारण करते हैं उनका जीवन यूँ ही व्यर्थ हो जाता है।
मानव जीवन को श्रेष्ठतम जीवन समझा जाता है जिसमें आसुरी सम्पदा को दैवी सम्पदा में परिवर्तित करने की क्षमता है।

मानव जीवन में हम ऐसे चौराहे पर खड़े हो जाते है जहाँ हमें यह सुनिश्चित करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है कि हमें किस

दिशा में जाना है।

बड़े भाग मानुष तन पावा।

बड़े भाग्य से हमें मनुष्य का तन मिला है लेकिन हम अपना जीवन व्यर्थ कर देते हैं। जैसे मृगमरीचिका के कारण दूर से ही मृग जल की तरङ्ग देखकर दौड़ पड़ता है, मृगजल को पानी समझता है।

मिट्टी के बने घुड़सवार व्यर्थ हैं, वे कोई पराक्रम नहीं कर सकते। माटी के अलङ्कारों का कोई मूल्य नहीं होता। अन्धे के हाथ में मोती हो तो वह उसका मूल्य नहीं समझ पाएगा। बन्दर के हाथ में नारियल हो तो वह उसे पत्थर ही समझेगा।

हमारा ऐसा भाग्य कि मानव जीवन में आए हैं। गलती नहीं करें, दैवी सम्पदा की ओर बढ़ें, श्रद्धावान बनें।

9.13

महात्मानस्तु मां(म्) पार्थ, दैवीं(म्) प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो, ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।9.13।।

परन्तु हे पृथानन्दन ! दैवी प्रकृति के आश्रित अनन्य मन वाले महात्मा लोग मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का आदि (और) अविनाशी समझकर मेरा भजन करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे पार्थ! दैवी प्रकृति के महात्मा मुझे सभी भूतों का सनातन कारण समझते है और मेरा अविनाशी अक्षर स्वरूप जानकर अनन्य चित्त से मुझे भजते हैं।

एक दुकानदार नित्य दुकान में आता था। अपने साथ अपना खाना लाता था। दोपहर में खाना आरम्भ करने के समय एक कुत्ता वहाँ आता था। वह कुते को पहले खाना खिला कर फिर स्वयं खाता था। एक दिन दुकान आने पर उसे पता चला कि दुकान का ताला टूटा है। उसने दुकान में प्रवेश किया और पाया कि सारा सामान ठीक है। जब उसने कैमरा देखा तो पता चला कि चोर आए थे। ताला भी तोड़ा था। अचानक वह कुत्ता आ गया जिसे वह खाना खिलाता था। कुत्ते ने उन चोरों पर हमला बोल दिया और भौंक-भौंककर उन्हें भगा दिया।

हम सोचते हैं कि क्या कहें कि कुत्ते में क्या है?

स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं-
मैत्रः करुण एव च

सभी भूतमात्रों के प्रति मन में करुणा और मैत्री का भाव रखो तो सारी सृष्टि भी उसी का काम करती है। सभी को सद्भाव से देखना है।

चराचर सृष्टि में वे परमात्मा व्याप्त हैं। यह गुह्यतम योग जब तक हमें समझ नहीं आएगा तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते।

9.14

सततं(ङ्) कीर्तयन्तो मां(यँ), यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां(म्) भक्त्या, नित्ययुक्ता उपासते॥9.14॥

नित्य- निरन्तर (मुझ में) लगे हुए मनुष्य दृढ़व्रती होकर लगन पूर्वक साधन में लगे हुए और प्रेम पूर्वक कीर्तन करते हुए तथा मुझे नमस्कार करते हुये निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।

विवेचन- राजविद्या समझाते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि जो भी कार्य कर रहे हो, निरन्तर मेरा चिन्तन करते हुए करो। युद्ध करते समय भी मेरा स्मरण हृदय से न जाए। श्रीभगवान् का वचन है कि युद्ध में की गई हत्या भी विवेकपूर्ण हत्या होती है, उसका पातक नहीं लगता।

सोलहवें अध्याय में दैवी गुण सम्पदा बताते समय श्रीभगवान् अहिंसा की बात कहते है और श्रीभगवान् यह भी कहते हैं

ततो युद्धाभ्यास युध्दस्तर नैवं पापमवाप्स्यसि।। 2:38।।

युद्ध करते समय हत्या करने में कोई पाप नहीं समझना। श्रीभगवान् एक तरह कहते हैं अहिंसा और दूसरी तरफ कहते हैं हत्या। यह परस्पर विरोधी बात है। यह वास्तव में परस्पर विरोध नहीं है। यदि आततायी लोगों को मारा नहीं जाए तो वे हजारों लोगों की हत्या कर देते हैं। उन हजारों लोगों को बचाने के लिए आततायियों को मृत्यु देना आवश्यक है। यह सैनिकों का कर्त्तव्य बनता है।

अर्जुन वह सेनानी है, वह सेनापति है जिसे कर्त्तव्य बोध कराने के लिए सबसे पहले गीता सुनाई गई। हमने गीताजी को गीता जयन्ती के दिन पूजा करने की वस्तु बना दिया है, यह दुर्भाग्य है। हमसे यह सबसे बड़ा पाप हुआ है। गीताजी में श्रीभगवान् के ऐसे-ऐसे वचन हैं जिनमें से थोड़ा भी जीवन में आ जाए तो जीवन परिवर्तित हो जाए।

श्रीभगवान् कहते हैं, जो सतत कीर्तन करता है वह मुझे प्राप्त करता है।
सतत कीर्तन का यह अर्थ नहीं है कि सारा दिन हाथ में करताल लेकर नाचते-गाते रहें, मृदङ्ग बजाते रहें। सतत कीर्तन का तात्पर्य है कि जो भी कार्य कर रहे हैं उस समय श्रीभगवान् का स्मरण करें। स्नान कर रहे हों तो सोचें कि मेरी देह तो श्रीभगवान् का मन्दिर है, इसे साफ कर रहा हूँ।

यह निरन्तर प्रयास से ही होगा। हर कार्य करते समय मन में श्रीभगवान् का स्मरण रहे। रसोई बनाते समय हमारे मन में अनेक विचार आते हैं, किन्तु हमें मन में एक ही विचार लाना है कि यह रसोई श्रीभगवान् के लिए बन रही है। भोजन करते समय भी मन में यह विचार रहे कि मैं श्रीभगवान् को भोजन खिला रहा हूँ।

हो सकता है कि आरम्भ में यह भाव कुछ क्षणों के लिए ही रहे। धीरे-धीरे अभ्यास से समय का अन्तराल बढ़ता जाएगा। जब यह भाव जाग्रत हो जाता है तो प्रतिदिन प्रबल उपासना का भाव मन में आ जाता है कि सब कार्य ईश्वर के ही निमित्त कर रहा हूँ।

तू ही सर्वत्र व्याप्त हरि तुझ में है सारा संसार।
इसी भावना से अन्तर भर मिलूँ सभी से तुझे निहार।।
प्रतिपल निज इन्द्रिय समूह से जो कुछ भी आचार करूँ।
केवल तुझे बचाने को बस तेरा ही व्यवहार करूँ।।

जब यह भाव मन में भर जाए कि तेरा ही व्यवहार हो रहा है तब अद्‌भुत घटनाएँ घटने लगती हैं।

वृन्दावन में पागल बाबा का मन्दिर है। दक्षिण भारत में एक न्यायाधीश थे। एक बार एक मुकदमा उनके सामने आया। भोला नाम के एक केवट ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए साहूकार से कुछ पैसा उधार लिया। जब उसके पास पैसा एकत्र हो गया तो उसने ब्याज समेत सारा पैसा साहूकार को लौटा दिया। साहूकार के मन में लालच आ गया। उसने भोला से पानी लाने के लिए कहा और इस बीच में उसने भोला का कागज बदल दिया। भोले-भाले केवट का अँगूठा लगवा दिया।

भोला की विशेषता थी कि वह बहुत भोला-भाला था। कुछ भी पूछने पर सदैव कहता था कि मैं कुछ नहीं जानता, मेरे तो रघुनाथजी जानते हैं। भोला गाँव के रघुनाथ मन्दिर में प्रतिदिन रघुनाथजी के दर्शन करने जाता था। साहूकार ने कुछ समय बाद मुकदमा कर दिया कि भोला केवट ने उनके पैसे नहीं लौटाए। न्यायालय में पेशी होने पर न्यायाधीश महोदय ने भोला से उसके निर्दोष होने के साक्ष्य माँगे। भोला ने कहा कि मेरे पास कोई साक्ष्य नहीं हैं पर रघुनाथजी सब जानते हैं।

पूछने पर पता चला कि रघुनाथजी गाँव के मन्दिर में रहते हैं। न्यायाधीश महोदय ने रघुनाथजी के नाम अदालत में उपस्थित होने के आदेश जारी कर दिए। पुजारी ने उसे आदेश को खोलकर देखा तो वह अचम्भित हो गया। पुजारी ने कहा कि भगवान् जी आपकी लीला है। आपको न्यायालय में बुलाया गया है। उसने रघुनाथ जी के चरणों में उस आदेश को अर्पित कर दिया।

नियत दिन पर भोला, साहूकार सब न्यायालय में एकत्र हुए। जब रघुनाथजी का नाम बुलाया गया तो धोती पहने एक बूढ़ा व्यक्ति आकर खड़ा हो गया जिसने ऊपर एक चादर ओढ़ रखी थी। उसने कहा कि मैंने देखा था कि भोला ने साहूकार के पैसे लौटा दिए हैं। साहूकार ने कहा कि मैंने इस व्यक्ति को कभी नहीं देखा। बूढ़े व्यक्ति ने कहा कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा। इसकी गद्दी के पीछे की अलमारी में लाल रङ्ग की चौदह नम्बर की बही में सब मिल जाएगा। उसमें भोला के अँगूठे वाला कागज भी है, जिसमें साहूकार ने अपने हाथ से लिखा है कि भोला ने पैसा लौटा दिया था। न्यायधीश ने कुछ लोगों को भेज कर साहूकार की दुकान से चौदह नम्बर की बही न्यायालय में मँगवा ली। उसे देखने पर पता चला कि साहूकार झूठ बोल रहा है और भोला सच्चा है। गवाही देने के बाद रघुनाथजी अचानक वहाँ से चले गए। कार्यवाही समाप्त होने रघुनाथजी को ढूँढा गया। भोला से पूछा गया, क्या तुम इनको जानते थे? भोला बोला कि मैंने भी पहली बार देखा था।

कार्यवाही समाप्त होने पर न्यायाधीश महोदय ने गाँव के मन्दिर में जाकर रघुनाथजी के बारे में जानकारी प्राप्त की। पुजारी ने बताया रघुनाथजी के नाम न्यायालय में उपस्थित होने का आदेश आया था और उसने वह रघुनाथ जी के चरणों में रख दिया था।

न्यायाधीश को यह जानकर बहुत क्षोभ हुआ कि उसने रघुनाथजी को कटघरे में बुलाया था और उन्हें खड़ा रखा था। यह जानकर न्यायधीश महोदय को आत्मग्लानि हुई और उन्होंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। वे वृन्दावन में आकर रहने लगे। मन्दिर में भगवान के समक्ष सूर्योदय से सूर्यास्त तक खड़े रहते थे और बोलते थे कि मैंने बहुत भूल की। आपको न्यायलय में बुलाया। मैं बैठा रहा आपको खड़ा रखा। धीरे-धीरे लोग उन्हें पागल समझने लगे और वह पागल बाबा के नाम से विख्यात हो गए। अन्त में वे श्रीभगवान् में ही समाहित हो गए।

9.15, 9.16, 9.17, 9.18, 9.19

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये, यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन, बहुधा विश्वतोमुखम्।।9.15।।
अहं(ङ्) क्रतुरहं(यँ) यज्ञः(स्), स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यम्, अहमग्निरहं(म्) हुतम्॥9.16॥

पिताहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः।
वेद्यं(म्) पवित्रमोङ्कार, ऋक्साम यजुरेव च।।9.17।।

गतिर्भर्ता प्रभुः(स्) साक्षी, निवासः(श्) शरणं(म्) सुहृत्।
प्रभवः(फ्) प्रलयः(स्) स्थानं(न्), निधानं(म्) बीजमव्ययम्।।9.18।।

तपाम्यहमहं(वँ) वर्षं(न्), निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं(ञ्) चैव मृत्युश्च, सदसच्चाहमर्जुन॥9.19॥

दूसरे साधक ज्ञान यज्ञ के द्वारा एकीभाव से (अभेद-भाव से) मेरा पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे भी कई साधक (अपने को) पृथक् मानकर चारों तरफ मुखवाले मेरे विराट रुप की अर्थात् संसार को मेरा विराट रुप मानकर सेव्य-सेवक भाव से (मेरी) अनेक प्रकार से (उपासना करते हैं)।
क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ (और) हवन रूप क्रिया भी मैं हूँ। जानने योग्य पवित्र, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत का पिता, धाता, माता, पितामह, गति, भर्ता, प्रभु,

साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान (भण्डार) (तथा) अविनाशी बीज (भी मैं ही हूँ)। (9.16-9.18)

हे अर्जुन ! (संसार के हित के लिये) मैं (ही) सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं (ही) जल को ग्रहण करता हूँ और (फिर उस जल को) (मैं ही) वर्षा रूप से बरसा देता हूँ (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् (भी) मैं ही हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि अर्जुन मेरे विश्वरूप को जानो।

हवा का झोङ्का धूल कण को अपने साथ उड़ाता है लेकिन उसे पृथ्वी तत्त्व से पृथक नहीं किया जा सकता है। जब वह नीचे गिरता है तो फिर उसी पृथ्वी तत्त्व में विलीन हो जाता है। वैसे ही यह सारा संसार मुझमें निहित है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि इस सारे संसार में सारे यज्ञ, सारी आहुतियाँ, सारी औषधियाँ, सारा घृत, सारे मन्त्र, अग्नि भी मैं ही हूँ। यह सारी चराचर सृष्टि भी मैं ही हूँ। इस जगत का पुरोधा अर्थात् धारक भी मैं ही हूँ। माता-पिता, पितामह, पवित्र **ॐकार** भी मैं ही हूँ। सारे वेद भी मैं ही हूँ। मैं ही अमरत्व हूँ। मैं ही पालनकर्त्ता, धारणकर्त्ता हूँ और विनाशकर्त्ता भी मैं ही हूँ। सत्य और असत्य भी मैं ही हूँ।

हम लोगों ने अपनी सुविधा के अनुसार श्रीभगवान् के अलग-अलग रूप बना दिए हैं। भगवान् श्रीविष्णुजी ने पालन किया, ब्रह्माजी ने निर्माण किया, भगवान् महेश्वर ने विध्वन्स किया। हम श्रीभगवान् को अलग-अलग रूपों में देखते हैं लेकिन वे एक ही हैं।

हमारे हृदय में यह दीप प्रज्वलित होना चाहिए कि हमें यह ज्ञान मिल जाए कि ये सभी रूप एक ही हैं। यह सारी सृष्टि एक तत्त्व के साथ देखनी पड़ेगी। श्रीभगवान् कहते है कि पवित्र **ॐकार** मैं ही हूँ। क्या आपने **ॐकार** को अपने अन्दर सुना है? यदि नहीं सुना तो सुन लेना। हम प्रत्येक की बातें सुनने में लगे हैं किन्तु अपने भीतर की आवाज नहीं सुनते। **ॐकार** की ध्वनि हमें सुननी पड़ेगी।

हमारी प्रत्येक श्वास के साथ एक आवाज आती है- सोऽहं सोऽहं।

प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूँ?
हर बाहर जाती श्वास के साथ आवाज आती है **सोऽहं सोऽहं**। प्रत्येक श्वास के साथ आवाज आती है, वो मैं ही हूँ।

हमें उत्तर भी अपने अन्दर से ही प्राप्त होगा। आँख बन्द कर लें और शान्त हो जाएँ फिर भीतर से उत्तर मिल जाएगा। इस खोज में लोग युगों से लगे हैं लेकिन वे अपने अन्दर नहीं झाँकते और बाहर ही खोजते रहते हैं।

सोऽहं में सारे व्यञ्जन निकालकर केवल स्वर रहने दें।

सो = स् (व्यञ्जन) + ओ (स्वर)
इसमें से व्यञ्जन (स्) को निकालने से स्वर (ओ) बचेगा।

इसी प्रकार
हं = ह् (व्यञ्जन) + अं (स्वर)
इसमें से व्यञ्जन (ह्) को निकालने से अनुस्वार (अं) बचेगा।

सोऽहं में से स् और ह् को निकालने पर ओ+अं = ॐ बचेगा।

श्रीभगवान् कहते हैं कि यह **ॐकार** मैं हूँ। जो इस **ॐकार** को जानता है वह राजविद्या को जानता है।

इसके लिए अभ्यास करना पड़ता है।
दृढ़ निश्चय यतयतयश्च दृढ़व्रता:।

बैठना पड़ता है, एक चित्त होना पड़ता है। बैठने में कष्ट भी होता है। पीठ में दर्द होता है। पाँव में चींटियाँ काटती हैं। यम नियम करने पड़ते हैं। इसके लिए आसन करने होते हैं। कुछ यम, कुछ नियम करने होते हैं।

दृढ़ निश्चय के साथ कुछ करना नियम है। कुछ चीजों को छोड़ना यम है। सारी अपवित्रता को छोड़ना यम है।

पवित्रता को धारण करें। फिर कुछ आसन करें ताकि हमारी रीढ़ की हड्डी सीधी रह सके। पाँव सशक्त बनें ताकि हम एक स्थान पर स्थिर बैठ सकें। रीढ़ की हड्डी को सीधा करके सीधा बैठना है। इससे हमारा diaphragm (मध्यपट्ट जो छाती और पेट के अङ्गों को अलग रखता है) नीचे जाएगा और लम्बी साँस अन्दर आ सकेगी।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।6.13।।

श्रीभगवान् बार-बार समत्व की बात करते हैं। आपका सिर, ग्रीवा, रीढ़ की हड्डी को सीधा रखना है। काया को सीधा रखकर धारणा के साथ अचल बैठना है, स्थिर बैठना है और नासिका के अग्र भाग पर ध्यान केन्द्रित करना है। उसके पश्चात् सोऽहं की ध्वनि आती है। धीरे-धीरे सोऽहं की यह ध्वनि ॐकार की ध्वनि प्रतीत होने लगती है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि रात को भी आपको ऐसा ही करना है। केवल शरीर की समानता ध्यान की ओर नहीं ले जा सकती। शरीर के साथ-साथ प्राण को भी समान करना आवश्यक है।

प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।।5:27।।

श्रीभगवान् कहते हैं कि नासिकाग्र पर ध्यान दें। कौन सी साँस अन्दर आ रही है और कौन सी बाहर जा रही है? कौन सी आवाज अन्दर से गूँज रही है? उस ॐकार की लहरें जब अन्दर चलती हैं तो मूलाधार चक्र से सहस्रार तक बढ़ती-बढ़ती आगे चलती हैं। सारे रोम-रोम में आती हैं। इसका अनुभव करने के लिए कानों में अँगुली डालकर गुँजन करें। भ्रामरी प्राणायाम करें। अन्दर से कम्पन आरम्भ हो जाते हैं। कान का पर्दा हिलने लगता है। अँगुलियों पर कम्पन अनुभव होता है। यह पवित्र **ॐकार** है।

पवित्र **ॐकार** की लहरें अन्दर से गूँजने लगती हैं, लेकिन इसके लिए बैठना पड़ता है, प्राणायाम करना पड़ता है, साँसों पर नियन्त्रण करना पड़ता है। आसन के बाद प्राणायाम करना पड़ता है।

प्रत्याहार अर्थात् नियन्त्रण।
प्रत्याहार में इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना पडता है।

धारणा- आँखें बन्द करके दृढ निश्चय के साथ बैठना पड़ता है। इधर-उधर नहीं देखना केवल अन्दर देखना है। सारी दिशाएँ बन्द हो जाएँ।

जो-जो भी ब्रह्माण्ड में है वह सब कुछ इस पिण्ड में है। उसका अनुभव करना है। हमारी धारा बहती जाए, राधा बनकर अन्दर जाना है। अन्दर जाकर चराचर सृष्टि के निर्माता को देखना है। धारणा सोऽहं को देखने की क्रिया है। सोऽहं में ध्यान केन्द्रित होता है। इस मैं को देखने की विद्या धारणा है। उस मैं को भी पुष्ट नहीं करना है, आगे बढ़ना है।

जब सोऽहं का ध्यान श्रीभगवान् में लग जाता है तो श्रीभगवान् साक्षात् दिखने लगते हैं। मन में परिकल्पना होती है कि श्रीभगवान् मेरे सम्मुख खड़े हैं, पीताम्बर धारण कर वंशी लिए हैं। जब ऐसा अनुभव होता है कि श्रीभगवान् भी हैं और भक्त भी हैं। मैं भी हूँ और तू भी है। आप भी हैं और इष्ट भी हैं। यह ध्यान है।

केवल मैं है तो धारणा,
मैं और तू है तो ध्यान,
केवल तू तो समाधि।

जैसे-जैसे ध्यान की अवधि बढ़ती जाती है मैं पूर्णरूप से विसर्जित हो जाता है और केवल तू बच जाता है। जब श्रीभगवान् शेष रह जाते हैं उसे समाधि कहते हैं।

यह अष्टाङ्ग योग है जिसे श्रीमद्भगवद्गीता ने प्रतिपादित किया। श्रीमद्भगवद्गीता में अलग-अलग बिखरे श्लोकों को महर्षि पतञ्जलि ने आठ भागों में बाँटकर अष्टाङ्ग योग बना दिया। अलौकिक आनन्द देने वाले इस योग से जीवन सफल हो, इस कामना के साथ आज का विवेचन सत्र समाप्त हुआ और प्रश्नोतर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता - श्रीमती सुनीता सुमन दीदी
प्रश्न - "गीता" का अर्थ क्या है? श्रीमद्भगवद्गीता किसने लिखी?
उत्तर - "गीता" का अर्थ है "गाया गया"। श्रीमद्भगवद्गीता श्रीगणेश जी ने महर्षि वेदव्यास जी के कहने पर लिखी थी।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती राधा झा दीदी
प्रश्न - क्या हमें पेड़-पौधों और पशुओं के साथ भी हिंसा नहीं करनी चाहिए?
उत्तर - पेड़-पौधों और पशुओं के साथ भी हिंसा नहीं करनी चाहिए क्योंकि उनमें भी जीव होता है और संवेदनाएँ होती हैं।

प्रश्नकर्ता - श्री जी॰डी॰ शर्मा भैया
प्रश्न - कुछ संस्थान जैसे ब्रह्म कुमारी और इस्कॉन के अनुसार जिन भगवान् श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में एकादशी के दिन अड़तालीस मिनट में अर्जुन को भगवद्गीता सुनाई थी उन्हें एक व्यक्ति माना गया है, श्रीभगवान् का अवतार नहीं, परन्तु महाभारत में उन्हें श्रीविष्णु जी का अवतार माना जाता है, तो क्या सही है?
उत्तर - अनेक विचारधाराओं के विभिन्न मत हैं। वेदिक और सनातन धर्म में श्रीकृष्ण को श्रीविष्णु जी का अवतार ही माना जाता है। कुछ लोग श्रीकृष्ण को "महामानव" भी मानते हैं तो कुछ उन्हें सामान्य मनुष्य ही मानते हैं। भागवत कथा के अनुसार भगवद्गीता सुनाते समय श्रीकृष्ण अपने परम् विराट रूप में प्रकट हुए, इसलिए भगवद्गीता में "श्रीभगवान् उवाच" कहा गया है जबकि महाभारत में अन्य स्थानों पर "श्रीकृष्ण" या "केशव" उवाच कहा गया है।

प्रश्नकर्ता - श्री जी॰डी॰ शर्मा भैया
प्रश्न - हमने पढ़ा है कि श्रीभगवान् जन्म नहीं लेते, अवतरित होते हैं, तो वे गर्भस्थ कैसे होते हैं?
उत्तर - गर्भस्थ होना उनकी लीला है, परन्तु उनका जन्म सामान्य मनुष्य की भाँति अपनी माता को प्रसव के कष्ट देकर नहीं होता। उन्हें प्रकट होने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन वे जन्म लेते हैं क्योंकि लोक सङ्ग्रह के लिए उन्हें दिखाना है कि वे भी एक सामान्य मनुष्य ही हैं।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती विनया मालवणकर दीदी
प्रश्न - श्रीमद्भगवद्गीता के मुखपृष्ठ पर श्रीकृष्ण, अर्जुन, उनका रथ और घोड़ों का जो चित्र है इनका क्या तात्पर्य है? क्या घोड़े हमारी इन्द्रियों के प्रतीक हैं?
उत्तर - कठोपनिषद में ऐसा माना जाता है, परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता के मुखपृष्ठ का चित्र, गीता में युद्धक्षेत्र में अर्जुन और श्रीकृष्ण का रथ के साथ जो विवरण किया गया है उसी के आधार पर है, उसका कोई अन्य अर्थ नहीं है।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती विनया मालवणकर दीदी
प्रश्न - क्या महाभारत का युद्ध सच में हुआ था या वह एक कहानी है जो हमारे मन में चल रहे अन्तर्द्वन्द्व को दर्शाता है?

उत्तर - युद्ध तो हुआ था क्योंकि कहा जाता है कि उस समय पुरुषों की सङ्ख्या कम हो गई थी, लेकिन इसका प्रमाण नहीं है क्योंकि उस समय चित्रण या मुद्रण की तकनीक नहीं थी।
हाँ, यह हमारे मन की प्रवृत्ति को भी दर्शाता है जहाँ क्रोध, मोह, मद, मत्सर सभी भावनाओं का वर्णन है।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती विनया मालवणकर दीदी
प्रश्न - स्वर्ग और नर्क सच में हैं या वे भी हमारे मन की ही वृत्ति है?
उत्तर - गरुड़ पुराण के अनुसार स्वर्ग और नर्क हैं जिन्हें हम अपने भौतिक अवयवों से अनुभव नहीं कर सकते। हो सकता है कि अन्तरिक्ष में कुछ स्थान हों परन्तु अभी तक अन्तरिक्ष का सम्पूर्ण अन्वेषण नहीं हुआ है। वैसे स्वर्ग और नर्क हम अपने जीवन में भी अपनी भावनाओं के माध्यम से अनुभव कर लेते हैं। मनोनुकूल कार्य होने पर सन्तोष होता है, यह स्वर्ग की अनुभूति है और प्रतिकूलता में क्रोध, ईर्ष्या नर्क की अनुभूति है।

प्रश्नकर्ता - डॉक्टर उमा तयाल दीदी
प्रश्न - गीता परिवार से जुड़ने के बाद गीता जी में ही मन रम गया है, सदा श्रीकृष्ण ही दिखते हैं जिससे गुरुमन्त्र का जाप पीछे रह गया है, क्या यह सही है?
उत्तर - गुरु तत्त्व और गीता तत्त्व एक ही हैं। गीता जी में कहा गया है " **समत्त्वं योग उच्यते**", दोनों में सन्तुलन आवश्यक है। गीता जी का पठन श्रेष्ठ है, परन्तु गुरुमाला के लिए सुनिश्चित किये गये समय पर उसी का जाप करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती उर्मिला माहेश्वरी दीदी
प्रश्न - गीता स्वाध्याय कक्षा में जब गीता का पठन किया जाता है तो कई बार उच्चारण गलत होते हैं, गीता परिवार से जुड़कर सही उच्चारण सीखते हुए यह ज्ञात होता है, परन्तु प्रशिक्षक वरिष्ठ होते हैं तो उन्हें उनकी त्रुटियाँ नहीं बता सकते। इसका क्या उपाय है?
उत्तर - गीता परिवार में श्रीमद्भगवद्गीता सीखने का उद्देश्य किसी की गलतियाँ बताना नहीं है बल्कि गीता जी के सान्निध्य में अधिक से अधिक समय रहना है, इसलिए गलतियों को न बताना ही सही है।

प्रश्नकर्ता - श्री सुहास आगेय भैया
प्रश्न - श्रीमद्भगवद्गीता में हम कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग को समझने का प्रयास करते हैं। क्या इन तीनों को एक साथ मिलाकर अपना जीवन सफल बना सकते हैं?
उत्तर - जी हाँ, कर सकते हैं, परन्तु इन तीनों के सिद्धान्त अलग-अलग हैं। जीवन में कभी कर्मयोग जागृत होता है और कभी भक्तियोग, जैसे अत्यन्त दुःखी होने पर भक्तियोग जागृत होता है। भक्तियोग, कर्मयोग से अलग नहीं है। अपने कर्म करते हुए श्रीभगवान् को अर्पित करना ही भक्तियोग है। श्रीभगवान् का स्मरण ही काफी है, हमेशा भजन कीर्तन करते रहने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञानयोग बहुत ऊँचा है और उसकी साधना कठिन है।

प्रश्नकर्ता - श्री मानव चौहान भैया
प्रश्न - नवम् अध्याय के पहले श्लोक में श्रीभगवान् " **ज्ञान विज्ञान सहितं**" कहते हैं, इसका अर्थ बताए। क्या यहाँ ज्ञान के साथ विज्ञान बता रहे हैं या ज्ञान और विज्ञान की तुलना की जा रही है?
उत्तर - ज्ञान के साथ विज्ञान बता रहे हैं। ज्ञान का अर्थ है जानकारी और विज्ञान का अर्थ है अनुभव। जैसे हम मिठाई देखते हैं, उसके बारे में जानते हैं, परन्तु जब तक खाएँगे नहीं उसकी मिठास का अनुभव हमें नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता - श्रीमती कविता मिश्रा दीदी
प्रश्न - पेड़ पौधों में संवेदना होती है, उनके साथ हिंसा नहीं करनी चाहिए। लेकिन कुछ पौधे हानिकारक होते हैं जिन्हें काटना ही पड़ता है, क्या यह पाप है?
उत्तर - जो हानिकारक है और जिनसे खतरा है उन्हें हटाना आवश्यक है, यह पाप नहीं होगा।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||